॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ॥

गोसेवा

गोमांसादि भक्षण विधिनिषेध विवेचन

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः॥

(श्री० भा० १०.१४.३१)

मेरे स्वामी ! जगत् के बड़े-बड़े यज्ञ सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अबतक आपको पूर्णतः तृप्त न कर सके। परन्तु आपने ब्रज की गायों और ग्वालिनों के बछड़े एवं बालक बनकर उनके स्तनों का अमृत सा दूध बड़े उमंग से पिया है। वास्तव में उन्हीं का जीवन सफल है, वे ही अत्यन्त धन्य हैं।
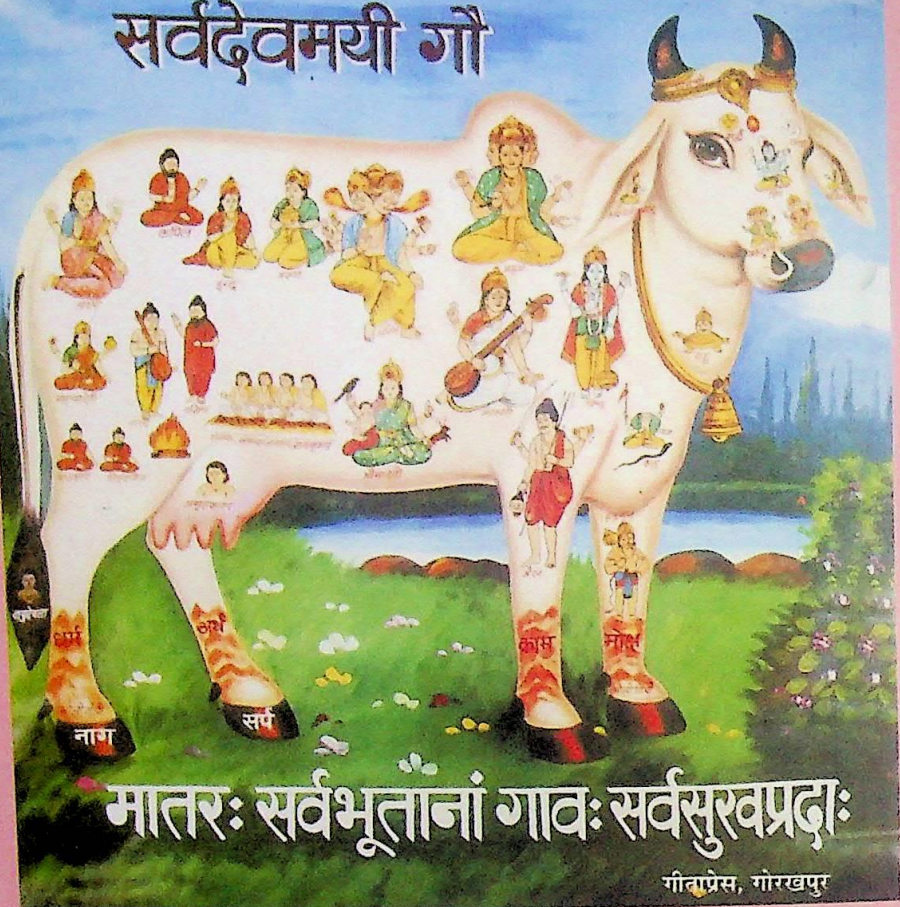
श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन्।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते॥

(श्री० भा० १०.१४.४०)

सबके मन-प्राण को अपनी रूप-माधुरी से आकर्षित करने वाले श्यामसुन्दर! आप यदुवंश रूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य हैं। प्रभो! पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और पशुरूप समुद्र की अभिवृद्धि करने वाले चन्द्रमा भी आपही हैं। आप पाखण्डियों के धर्मरूप रात्रि का घोर अंधकार नष्ट करने के लिए सूर्य और चन्द्रमा दोनों के ही समान हैं। पृथ्वी पर रहने वाले राक्षसों को नष्ट करने वाले आप चन्द्रमा, सूर्य आदि समस्त देवताओं के भी परम पूजनीय हैं। भगवन्! मैं अपने जीवनभर, महाकल्पपर्यन्त आपको नमस्कार ही करता रहूँ।

❖ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❖

गोसेवा

गोमांसादि भक्षण विधिनिषेध विवेचन

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन
न्याय-वैशेषिकशास्त्रि, न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण
सांख्य, मीमांसा वेदान्त, तर्क, तर्क, न्याय, वैष्णवदर्शनतीर्थ,
विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादिता।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक :
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस
श्रीहरिदासनिवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ.प्र.

॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ॥

गोमांसादि भक्षण विधिनिषेध विवेचन

कारुण्यादि गुणोपेतं वेदान्तरत्न भूषितम्।
अहिंसा धर्म संपृक्तं नमाम्यहं गुरुं परम्।।

"अहिंसा परमो धर्मः"

विश्व कल्याण के निमित्त प्रतिपादित विभिन्न धर्मों में मानव के द्वारा कथित अहिंसा ही एकमात्र परम धर्म है। समस्त धर्मग्रन्थों में अहिंसा धर्म का मुख्य रूप से प्रतिपादन देखने में आता है।

अहिंसा धर्म सर्वश्रेष्ठ धर्म है। धर्माचार्यगण एवं सामाजिक, राजनीतिज्ञ नेतागण भी सुखशान्ति लाभ के लिए अहिंसा धर्म का प्रवचन करते हैं। इसलिए शास्त्रीय दृष्टि से इसको विचार करना परमावश्यक है। इससे जनता की सेवा होगी ही परम भागवत की सेवा भी सम्पन्न होगी।

आध्यात्मिक उत्कर्ष साधन का नाम धर्म है। प्राणियों के सर्वाङ्गीण उन्नति और कल्याण के लिए ही धर्म का वर्णन किया गया है। अतः जो इस उद्‌देश्य से युक्त हो जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध होता हो वही धर्म है।

धर्म का नामकरण इसलिए हुआ है कि यह सबकी रक्षा करता है, धारण करता है, अधोगति से बचाता है और उन्नत गति को प्राप्त कराता है। धर्म से ही समस्त प्रजा का रक्षण होता है। अतः जिससे धारण-पोषण सिद्ध होता है वही धर्म है। ऐसा ही धर्म को जानने वालों का निश्चय है। प्राणियों की हिंसा न हो इसके लिए धर्म का उपदेश किया गया है। अतः जो अहिंसा से युक्त है वही धर्म है।

धारणत् धर्ममित्याहु धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।
अहिंसार्थाय भूतानां धर्म प्रवचनं कृतम्।
यः स्यादहिंसा संपृक्तः स धर्म इति निश्चयः।।

(महाभारत शान्ति पर्व १०९-११ व १२)

'मां हिंस्यात् सर्वभूतानि' किसी भी प्राणी की हिंसा किसी भी प्रकार से न करे। यह वेद का निषेध है। हिंसा केवल हत्या करना ही नहीं है किन्तु किसी

भी रीति से प्राणियों के शरीर, मन को कष्ट पहुँचाना, अपमान करना, तिरस्कार करना, वस्तु अपहरण करना, मिथ्या बोलना, कष्टप्रद आरोप करना भी हिंसा है। अतएव सर्वत्र सर्वदा हिंसा न करने के लिए गीता एवं मनुस्मृति में कहा गया है – ''अद्वेष्टा सर्वभूतानां'' गीता, ''अहिंसया च भूतानां अमृतत्वाय कल्पते'' मनुस्मृति। प्राणियों की हिंसा न करने से ही मुक्ति होती है। समस्त मानव धर्म वर्णन प्रसङ्ग में मनुस्मृति में लिखित है –

'अहिंसा सत्यमास्तेय शौच इन्द्रिय निग्रहः' अहिंसा से ही मानव मुक्त होता है, अहिंसा से ही श्रेष्ठ धर्म की उपलब्धि होती है। कारण अहिंसा से ही प्राणिमात्र को अभय प्रदान पूर्ण होता है। आदि पुराण में भी उक्त है – धर्मों के मध्य में श्रेष्ठ धर्म है प्राणिमात्र को अहिंसा के द्वारा अभय प्रदान करना।

इसीलिए लोक कल्याण के लिये भूमण्डल में जितने भी धर्म हैं सबमें अहिंसा को परम धर्म कहा गया है। अतएव कथित है –

प्रविशन्ति यथा नद्याः समुद्र मृजु वक्रगाः।
सर्वेऽधर्मा हिंसायां प्रविशन्ति तथा दृढ़म्।।

(पद्मपुराण)

जिस प्रकार सरल कुटिल पथ से प्रवाहित होकर नदी समूह समुद्र में प्रवेश करती हैं उस प्रकार समस्त अधर्म शास्त्र प्रतिकूल होकर हिंसा में प्रवेश करते हैं।

इसलिए भगवान व्यासदेव ने भी कहा है – जिसका सार संकलन है **''अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयं। परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम्।।''** यहाँ परपीडन ही महती हिंसा है एवं परोपकार ही अहिंसा होने के कारण धर्म है। कारण शरीरेन्द्रिय, मन–बुद्धि प्रभृत्ति का उत्कर्ष साधन इससे होता है। और भी भगवान व्यास देव ने कहा है – ''इदमेव धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न सभाचरेत्।'' प्रत्येक व्यक्ति सुख चाहता है स्वप्न में भी दुःख नहीं चाहता है किन्तु सुख क्या है, दुःख क्या है नहीं जानता है। शास्त्रकारों ने यह निश्चय किया है – ''अनुकूल वेदनीयं सुखम्। प्रतिकूल वेदनीयं दुःखम्। अनुकूलता ही सुख है व प्रतिकूलता ही दुःख है। इसलिए जो अपने को अच्छा नहीं लगता दूसरे के प्रति उस प्रकार आचरण न करे। जो अपने को अच्छा लगता है उस प्रकार का आचरण दूसरे के प्रति करे। यही समस्त धर्मों का महान उपदेश है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। जहाँ हिंसा है वहाँ सत्य नहीं है।'' इस कथन से प्रतिपादित होता है कि जहाँ पर सत्य नहीं है वहीं पर हिंसा

है। देवी भागवत में इसका उल्लेख है। वेदव्यासदेव ने तो एक वाक्य से ही समस्त धर्मों का सार प्रतिपादन किया है–

इदमेव धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेशां न समाचरेत्।।

प्रतिकूल आचरण से ही हिंसा होती है। यह इस जगत एवं पर जगत में समान है। इसलिए अहिंसा वृत्ति के लिए अपना प्रतिकूल आचरण दूसरे के प्रति नहीं करना चाहिए। यही अनुशासन, कर्तव्यता, नैतिकता, सदाचार एवं राष्ट्रभक्ति है। यह परम पवित्र है। इससे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं परम सुख प्राप्तकर मानव जन्म सफल होता है।

श्रूयते द्विविधं शौचं यच्छिष्टैः पर्य्युपासितम्।
बाह्यं निर्लेप निर्गन्धमनाः शौचमसिसनम्।।
अद्भिः शुद्ध्यन्ति गात्राणि बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यन्ति।
अहिंसया च भूतात्मा मनस्सत्येन शुद्ध्यति।।

बाहर की पवित्रता जल से एवं निर्गन्ध से होता है। किन्तु अन्तरात्मा की पवित्रता अहिंसा से होती है। शरीर की शुद्धि जल से, बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से, आत्मा की शुद्धि अहिंसा से एवं मन की शुद्धि सत्य से होती है। इसका वर्णन सभी ने किया है।

महात्मा गाँधी ने तो अहिंसा एवं सत्यव्रत से ही परतन्त्र भारत को स्वतन्त्र किया। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भीषण कष्ट सहन करके अहिंसा एवं सत्यव्रत को नहीं छोड़ा।

मनुस्मृति में जिस प्रकार विविध धर्म वर्णन प्रसङ्ग में अहिंसा को प्राथमिकता दी गयी है, उस प्रकार बौधायन धर्म सूत्र में भी तपस्या के वर्णन प्रसङ्ग में अहिंसा को प्रथम स्थान मिला है।

"अहिंसा सत्यमस्तेय सवनेषूदकोपस्पर्शनं। गुरु शुश्रूषा ब्रह्मचर्य अधः शयनमेकवस्त्रानाशकं इति।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण में भी भगवान श्रीकृष्ण ने धर्मोपदेश के प्रसङ्ग में परम भक्त, सुहृद उद्धव को धर्मोपदेश देते समय अहिंसा को प्रथम स्थान दिये हैं।

अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसंचयः।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयं।।

शौचं जपस्तपो होम श्रद्धातिथ्यं मदर्चनं।

तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्य सेवनम्।।

एते यमाः स नियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः।

पुमानुपासितास्तात यथा कामं दुहन्ति हि।।

श्रीमद्भागवत के कपिल उपाख्यान में भी श्रीकपिल मुनि माता देवहूति को कहे थे –

"अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थ परिग्रहः।

ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम्।।

पतंजलि मुनि ने पातंजल योगसूत्र में कहा है–

"अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।"

हितोपदेश में कथित है–

"हिंसकान्यपि भूतानि यो हिनस्ति स निर्घृणः।

सा याति नरकं घोरं किं पुनर्यशः शुभानि च।।

जो व्यक्ति अकारण हिंसा, प्राणियों का वध करता है, वह दया रहित, निर्दयी, क्रूर होता है। वह अपने कर्म से ही नरक गमन करता है। जो व्यक्ति निर्दोष शाकाहारी प्राणियों का वध करता है, उसका उससे भी अधिक पाप होता है।

धर्मार्थ काम मोक्षेषु पुरुषार्थेषु भरतर्षभः।

यच्चेहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष चार पुरुषार्थ हैं, वर्तमान में जिस प्रकार किया जाता है, परलोक में उसी प्रकार वह उपलब्ध होता है। जैसा करना वैसा प्राप्त करना नियम है।

अहिंसा की प्राथमिकता के विषय में महाभारत में कहा गया है –

अहिंसा निरतः स्वर्ग गच्छेदिति मतिर्मम।

अहिंसार्थ समायुक्तैः कारणैः स्वर्गमश्नुते।।

अहिंसा धर्म नित्यता, अहिंसा चैव जन्तुषु।

अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा सत्य वचनम्।।

भूतानुकम्पकाः लोक साक्षिणः अहिंसा समता शान्तिः।

(महाभारत वन पर्व)

उद्योग पर्व में उक्त है – **"अहिंसैका सुखावहा।"**

द्रोण पर्व में उक्त है – "अहिंसा सर्वभूतेषु धर्मज्यायस्करं विदुः।"

शान्ति पर्व के राजधर्म प्रसङ्ग में उक्त है–

अहिंसा मन्दको जल्पो मुच्यते सर्व किल्विषैः।
अहिंसा सत्यमक्रोधः क्षमेज्या धर्म लक्षणम्।।
अहिंसा सत्यमक्रोधो वृत्ति दानानुपालनम्।
येष्वानृशृंस्यं सत्यं चाप्यहिंसा तत्र आर्जवम्।।
अहिंसको ज्ञानसंदृप्तः स ब्रह्मासनमर्हति।।
अहिंसासत्यमानृशृंस्यं दमो घृणा
एतत् तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम्
अहिंसा सर्वभूतेषु सत्यवाक् सुदृढ़ व्रतः।

इस प्रकार शान्तिपर्व के आपदधर्म प्रसङ्ग में कथित है –

अहिंसा सत्य वचनं दानमिन्द्रिय निग्रहः।
एतेभ्योऽपि महाराज तपो नानशनात् परम्।।
अहिंसा सर्वभूतेषु सत्यवाक् सुदृढ़व्रतः।
अहिंसा सत्य वचनं दानमिन्द्रिय निग्रहः।।
एतेभ्योऽपि महाराज तपो नान्यत्परापरम्।
अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारा त्रयोदश।।

शान्ति पर्व के मोक्ष धर्म में भी उक्त है –

अहिंसा सर्वभूतानां मैत्रायन मतश्चरेत्।
अहिंसकः समः सत्यो धृतिमान् नियतेन्द्रियः।।
शरण्यं सर्वभूतानां गतिमाप्नोत्यनुत्तमम्।
अनुवर्त्तामहे वृत्तमहिंसानाम् मदात्मनाम्।।

इस प्रकार अनुशासन पर्व में एवं अश्वमेध पर्व में भी लिखित है।

इस प्रकार परमोपयोगी एवं पालनीय अनेकों प्रमाण हैं।

जहाँ कहीं पर धर्म शास्त्र में याग क्रिया पशुवध का विधान देखने में आता है, वहाँ श्रुति–स्मृति का विरोध उपस्थित होने पर किसका प्रामाण्य होगा, किसका प्रामाण्य नहीं होगा, इसका विचार करना आवश्यक है।

इस प्रकार श्रुति के विचार में महर्षि जैमिनी कृत मीमांसा सूत्र ही प्रमाण है। सूत्र इस प्रकार है (१.३.३.)

विरोधत्वनपेक्ष्यं स्यादपि ह्यनुमानम्।

इस सूत्र के अनुसार श्रुति एवं स्मृति का विरोध उपस्थित होने पर स्मृति वक्तव्य का अप्रमाण्य होगा। यदि श्रुति का विरोध न हो तो श्रुति का अनुमान करना होगा। जिस प्रकार श्रुति वाक्य का प्रामाण्य है उस प्रकार स्मृति वाक्य का भी प्रामाण्य है, कारण श्रुति का लोप हो गया है, उपलब्ध नहीं है।

मनु ने भी कहा है, श्रुति-स्मृति का विरोध होने पर श्रुति वचन का ही प्रामाण्य स्वीकार करना आवश्यक है। उक्त है -

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्म जिज्ञासा मानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।

अर्थ एवं काम में आसक्त न होने पर ही धर्म विषयक जिज्ञासा करनी चाहिए। धर्म जिज्ञासा में श्रुति ही प्रमाण है।

महाभारत में कथित है – वेद विरोधी एवं कुदृष्टि सम्पन्न स्मृति समूह तमोगुण युक्त होने के कारण निष्फल हैं।

श्रुति स्मृति के विरोध में समाधान करने के लिए जाबाल मुनि ने कहा है -

"श्रुति स्मृति विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी।
अविरोधे सदा कार्यं स्मार्तं वैदिकवत् सदा।।"

श्रुति स्मृति के परस्पर विरोध होने पर श्रुति का ही प्रामाण्य स्वीकार करना चाहिये, अविरोध होने पर श्रुति के तरह की स्मृति को मान्यता होगी।

इस विषय में पुराण में कथित है – श्रुति के साथ स्मृति का विरोध होने पर स्मृति का प्रामाण्य नहीं होगा।

अहिंसा का विचार किया गया। अहिंसा पीड़ाकर नहीं होती है, सब प्रकार से अपने व दूसरे का सुखकर होने के कारण, अहिंसा धर्म को स्वीकार करना चाहिए।

इस विषय में कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि वृहदारण्यक उपनिषद् में उल्लेख है कि गोमांस भक्षण करना चाहिये।

अथ य इच्छेत् पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिङ्गमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै औक्षेण वाऽऽर्षभेण वा।

इस उपनिषद् वाक्य का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद राजा राजेन्द्र लाल मित्र ने 'बीफ इन एन्सिएन्ट इण्डिया' नामक पुस्तक में किया है। जिसका

संक्षेपार्थ इस प्रकार है – "यदि कोई भी व्यक्ति इस प्रकार का पुत्र चाहता है कि वह प्रसिद्ध सार्वजनिक प्रिय वक्ता हो, समस्त वेदज्ञाता हो, पूर्णायु पर्य्यन्त जीवित हो, तो वह गोमांस का भक्षण करे, भात के साथ पका हुआ गोमांस नवनीत के साथ भक्षण करे। पत्नी के साथ इस प्रकार से गोमांस खाने पर पुत्र उत्पन्न होगा। गो युवक, वृद्ध अथवा वृष होना आवश्यक है।" इस प्रमाण से वेद का अर्थ जानकर अंग्रेज लोक गोमांस भक्षण करते रहते हैं। इसलिए इस उपनिषद् वाक्य का अर्थ विवेचन करना आवश्यक है।

इस उपनिषद् वाक्य में चार पद हैं –

१. **स य इच्छेत् पुत्रो मे शुक्लो जायेत वेदमनुब्रवीत सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै।।**

२. **अथ य इच्छेत्पुत्रो मे कपिलः पिङ्गलो जायेत द्वौ वेदानुब्रवीत सर्वमायु-रियादिति दध्योदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै।।**

३. **अथ य इच्छेत् पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो जायेत त्रीन्वेदाननुब्रुवीत सर्व-मायुरियादित्युदौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै।।**

४. **अथ य इच्छेद्दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाच-यित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै।।**

१. शुक्ल वर्ण, वेदपाठी दीर्घायु पुत्र चाहने वाले को दूध के साथ चावल पकाकर घी के साथ खाना चाहिए।

२. कपिल पिङ्गल वर्ण एवं वेदपाठी पुत्र की कामना हो तो दही के साथ चावल पकाकर घी के साथ खाना चाहिये।

३. श्याम वर्ण एवं लोहित नयन, वेदपाठी दीर्घायु पुत्र की कामना हो तो चावल पकाकर घी के साथ खाना चाहिए।

४. कोई चाहे कि मेरी बेटी पण्डित हो, तो वह तिल के साथ चावल पकाकर घी के साथ भोजन करे।

इसका अर्थ इस प्रकार है – एक वेद जानने वाले के एवं समस्त वेद जानने वाले के लिए भोजन का विधान इस प्रकार है –

एक वेद जानने वाले के लिए दूध के साथ पका हुआ भात घी के साथ भक्षण करने का विधान है।

दो वेद जानने वाले के लिए दही के साथ पका हुआ भात घी के साथ खाने का विधान है।

तीन वेद जानने वाले के लिए जल के साथ पका हुआ भात घी के साथ खाने का विधान है।

विदुषी कन्या के लिए तिल के साथ पका हुआ भात घी के साथ खाने का विधान है।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार चारों वेदों का क्रम इस प्रकार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। इस क्रम के अनुसार वृहदारण्यक उपनिषद् ग्रन्थ भी क्रमिक सम्बन्ध में आता है। तब इसका तात्पर्य यह होगा कि विभिन्न वेदों में निष्णात पुत्र प्राप्ति के लिए दम्पति का भोजन क्रम इस प्रकार होगा–

१. ऋग्वेद के ज्ञान के लिये घृत मिश्रित तण्डुल दूध के साथ लेना होगा।

२. ऋग् यजुर्वेद के ज्ञान के लिये घृत मिश्रित ओदन दही के साथ लेना होगा।

३. ऋग् युज:सामवेद के ज्ञान के लिये घृत मिश्रित भात जल के साथ लेना होगा।

४. चारों वेदों के ज्ञान के लिये घृत मिश्रित ओदन गोमांस के साथ लेना चाहिये।

पाश्चात्य विद्वानों के मत को स्वीकार करने पर अर्थ होगा– अथर्ववेद का ज्ञान के लिये गोमांस खाना आवश्यक है। उक्त प्रकरण में एक, दो, तीन, चार वेदों में निष्णात पुत्र की प्राप्ति के लिए भोजन प्रकरण में वृद्ध बकरी माँस भक्षण का विधान नहीं किया किन्तु चारों वेदों में पारङ्गत पुत्र प्राप्ति के लिये और अथर्ववेद में निष्णात पुत्र प्राप्ति के लिए हठात् गोमांस भक्षण का विधान करना कैसे समीचीन होगा।

अतएव इस प्रकरण का विचार सूक्ष्म दृष्टि से पूर्ण रूप से करना आवश्यक है। पाश्चात्य व्यक्तिगण अंग्रेजी भाषा में फ्लेश (Flesh) शब्द का अर्थ, पशु के कोमल मांस के अतिरिक्त फल प्रभृति शाक सब्जी में भी करते हैं। अतएव मीट (Meat) शब्द का भी पशु माँस को छोड़कर फल सब्जी आदि में प्रयोग देखने में आता है। उसी प्रकार संस्कृत भाषा में, वेदों में, उपनिषदों में, स्मृतियों में मांस शब्द का प्रयोग फल विशेष के कोमलांश में शाक सब्जी के पोषक तत्व को लक्ष्य करके किया जाता है। व्यवहार में भी वैसा ही है।

विभिन्न प्रकार के भाषा कोश में भी मांस शब्द का अर्थ उसी प्रकार है, अनुसंधान करना चाहिये।

संस्कृत भाषा में प्रयोग है– प्रस्थं कुमारिका मासं आनय।

इसका अर्थ दो प्रकार से हो सकता है। १. एक प्रस्थ कुमारी का मांस ले

आओ। २. कुमारी घृतकुमारी औषधि विशेष का कोमल अंश विशेष एक प्रस्थ ले आओ। यहाँ पर कुछ भी विवाद नहीं है।

विशेषकर संस्कृत भाषा के गोशब्द का अर्थ अनेक प्रकार है। केवल पशु वाचक ही नहीं है।

आयुर्वेद शास्त्र के औषधि वर्णन प्रसङ्ग को इस सन्दर्भ में देखना चाहिये-

गोदन्ति – गो की दाँत एवं औषधि विशेष है।

गोक्षुर – गो का खुर एवं गोखरु नामक औषधि विशेष है।

गोजिह्वा – गो की जीभ गोजिह्वा नामक औषधि विशेष है।

अजाकर्ण – छाग की कान, अर्जुन नामक एक पादप है, जिसका प्रयोग औषधि निर्म्माण में होता है।

अजा – छागल (बकरी), एक मूल है जिसका बहुल प्रयोग औषधि निर्माण में होता है, यह जड़ी बकरी के कान की तरह होता है।

पुराण वेद प्रभृति में इन शब्दों का प्रयोग देखने में आता है। दुराग्रह से यदि एक ही अर्थ ग्रहण किया जाता है, प्रमाण युक्ति शून्य होने के कारण उपहास्यास्पद ही होता है।

अतएव वृहदारण्यक के (६-४) अध्याय की व्याख्या करना आवश्यक है। इसका प्रथम अध्याय का प्रथम पाद इस प्रकार है-

"एषां वै भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपोऽपाभोषधय ओषधीनां पुष्पाणि पुष्पाणां फलानि फलानां पुरुषः पुरुषस्य रेतः।।

इसका अर्थ है – "सब भूतों का रस पृथिवी है, पृथिवी का रस जल है। जल का रस औषधि है, औषधि का रस पुष्प है। पुष्प का रस फल, फलों का रस पुरुष है, पुरुष का रस शुक है, पुरुष का सार वीर्य है।" यहाँ पर पृथिवी रस से आरम्भ कर पुरुष रस पर्यन्त किसी जीव का, पशु का मांस वर्णन देखने में नहीं आता है।

अतएव यहाँ पर सुनिश्चय यह होता है कि – सर्वोत्तम पुत्र प्राप्ति के लिए सर्वथा उत्तम औषधि सेवन करना आवश्यक है। जिससे उत्तम वीर्य उत्पन्न हो, न कि पशु का मांस भोजन करने से उत्तम वीर्य होगा। यहाँ औक्ष शब्द से जो बछड़ा अर्थ किया जाता है एवं उसका मांस खाने का विधान दिया जाता है, यह गलत है।

इस प्रकार उक्ष शब्द का रूप औक्षेण होता है। इसका अर्थ सर मानियर विलियम संकलित प्रसिद्ध संस्कृत अंग्रेजी शब्द कोश में इस प्रकार है –

(1) A bull (as impreahating the flack)

महोक्ष महावृषभ गवां गर्भाधानाय समर्थः।

महोक्ष महावृषभ है, जो गर्भाधान के लिये सक्षम है।

(2) Name of 'Soma' as sprinkling or scattering small drops.

सोमरसः निर्सरन् रसपूर्णः अष्टवर्गेषु एकमौषध वृषभ नामक विदधते।
वृषभ शब्दत एव आर्षभेण शब्द सिद्धः।

यहाँ पर उन्होंने सुश्रुतमान प्रकाश के अनुसार ही अर्थ किया है। औषधीय लघु वृक्षांकुर एक औषधि है, वृक्ष का अंकुर है। इस प्रकार उक्ष शब्द का भी अर्थ है।

क्षरणशील रस से परिपूर्ण को सोम कहा जाता है। इस प्रकार उक्ष शब्द का भी अर्थ है। उसका प्रयोग अनेक वेदमन्त्रों में सोमरस अर्थ में मिलता है। स्वर्गीय पण्डित श्रीपाददामोदर सातवलेकर के द्वारा सम्पादित स्वाध्याय मण्डल आश्रम पाटडी, गुजरात प्रान्त से प्रकाशित गोज्ञान कोष के प्राचीन वैदिक विभाग के खण्ड ख वर्ग के प्रथम २२८ पृष्ठ से २३२ पृष्ठ पर्यन्त संख्याक्रम ७९१ से ८०१ पर्य्यन्त में उपलब्ध है।

मांस शब्द का अर्थ उस प्रकार है। मनु स्मृति के एक श्लोक में मांस शब्द का उल्लेख है –

मांसं भक्षयितामुभयस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः।।

यह मांस शब्द दो पदों से मिलकर बना है (मां+स) इसका अर्थ– मां यो अत्ति भक्षयिष्यति वा। अर्थात् इस जन्म में जो मेरा मांस भक्षण करता है, अगले जन्म में वह उसका मांस खाता है। इस प्रकार अर्थ विद्वान् व्यक्तिगण करते हैं।

यक्ष रक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
तद् ब्राह्मणेन नातव्यं वे नाना मोदुनता हविः।।

अर्थात् मद्य–मांसादि अपवित्र पदार्थ हैं। यक्ष, रक्षः पिशाचों के खाने की चीज है। इसलिए दिव्य सात्विक पदार्थ का भोजन द्विजाति के लिये करना आवश्यक है। किसी भी प्रकार से मद्य–मांस का ग्रहण न करे।

यद्यपि इस प्रकार के वचन को अवलम्बन करके मद्यमांसादि भोजन में प्रवृत्त होते हैं।

न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।।

तन्त्र ग्रन्थों में यज्ञ में मांस भक्षण का विधान है। इसका भी विचार करना आवश्यक है। यज्ञ कर्म में धन का अपव्यय होता है। परिश्रम भी होता है। विविध वस्तुओं का सङ्ग्रह करने में अतिशय परिश्रम होता है। सर्वजनों के हित के लिए आरम्भ कर्म में समस्त जनों को एकत्र करने में भी क्लेश होता है। अति परिश्रम से ही यह कार्य सम्पन्न होता है।

अतिशय सौभाग्य होने पर ही कोई व्यक्ति यज्ञ कार्य में प्रवृत्त होता है। उस यज्ञ में पशुवध होता है। वहाँ पर मांस भक्षण का विधान है। यज्ञ के शेष में यजमान मांस भक्षण के द्वारा तृप्त कैसे होता है? वहाँ पर विधि इस प्रकार है- यज्ञ के शेष भाग में यजमान मांस का घ्राण ग्रहण करता है, इसका अभिप्राय यह है कि यही उत्तम विधि है। यज्ञ में मांस भक्षण से ही यज्ञ कर्म पूर्ण होता है। मतान्तर में मांस भक्षण के स्थान पर उसका घ्राण लेना है। घ्राणेन्दिय के द्वारा मांस का घ्राण मिलने से ही मांस भक्षण कार्य सम्पन्न होता है। क्योंकि "घ्राणेन अर्द्धभोजनम्" घ्राण लेने पर आधा भोजन होता है। अतएव यज्ञ में मांस भोजन करने से दोष नहीं होता है। शास्त्रज्ञ व्यक्तिगण इसका निर्वाह मांस घ्राण के द्वारा करते हैं। यज्ञ कार्य सम्पादन करने में अधिक धन व्यय, अधिक परिश्रम होता है। इस प्रकार यज्ञ के बहाने मांस भक्षण का विधान कैसे सम्भव होगा। मांस भक्षण का प्रतिपादन इससे कैसे सम्भव होगा। यहाँ पर परिसंख्या विधि के द्वारा विधि से निषेधात्मक अर्थ की उपस्थिति होती है।

इस प्रकार मद्यपान के विषय में विचार करना आवश्यक है। यज्ञ में सोमरस पान करना शास्त्र सम्मत है। यह एक औषधि है। इसके द्वारा निर्मित याज्ञिक रस का पान करने से दोष नहीं होता है। कारण आयुर्वेद शास्त्रों में रोग से आरोग्य लाभ करने के लिये इसका विधान है। चिकित्सकगण रोगी को रोगमुक्त करने के लिये इसका विधान देते हैं। यह रस मद्य के तुल्य है। औषधार्थे सुरा पिबेत् अर्थात् रोग से मुक्त होने के लिए सुरापान भी करना चाहिए। रस विशेष भावना के लिये इसका ग्रहण न करे। विषय वासना से अधिक सेवन करने पर दोष होता है। औषधि के लिए सुरापान भी विहित है। विषय वासना बुद्धि से इसका पान न करे। अधिक पान करने पर एवं विषय वासना से प्रेरित होकर पान करने से पाप होगा। अतएव यज्ञ में सोमरस पान का जो विधान है,

वह औषधि रूप में ही है। अन्यत्र निषेध है। इस प्रसङ्ग में मैथुन के सम्बन्ध में विचार करते हैं। मनु स्मृति में इसके विषय में जो विधान है, उसका अध्ययन अवश्य करना चाहिए-

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां द्वारकर्मणि मैथुने।।

इस वचन के अनुसार निषिद्ध तिथि वार का परित्याग करके विधिवत् परिणीत पत्नी के साथ सम्बन्ध दोषावह नहीं है। इस प्रकार व्यवहार लोक कल्याण के लिए होता है।

वस्तुतः पशु वध प्रकरण आध्यात्मिक है। जो व्यक्ति आध्यात्मिक मार्ग का अनुयायी है, उसके लिए क्या पशु वध यज्ञ करने का विधान है। आध्यात्मिक पथ में बाहर की किसी वस्तु का ग्रहण नहीं होता है। किन्तु शरीर सम्बन्धी वस्तु का ही ग्रहण होता है। वहाँ पर पशु क्रोध है, हवि आत्मा है, घी बुद्धि है, समिधा इन्द्रिय समूह हैं, कुण्ड शरीर है। इस प्रकार यज्ञ होता है। यहाँ पर पशु वध रूप शास्त्र का विधान आसक्ति त्याग को कहते हैं। सर्वत्र निःस्पृह राग मुक्त होना ही पशुवध है। यहाँ यज्ञ में होता मन है, और अग्नि ज्ञान को कहते हैं।

महानिर्वाण तन्त्र में इसका उल्लेख है -

काम क्रोध विमोह लोभ पशुकान् छित्वा विवेकासिना।
मांसं निर्विषयं परात्म सुखदं खादन्ति तेषां बुधाः।।

इस ग्रन्थ में वास्तविक आध्यात्मिक पशु हिंसा को ही पशु हिंसा कहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह पशु हैं। विवेक असि के द्वारा उसको छेदन करके निर्विषयात्मक मांस को जो आत्म सुहृद है, उसका भोजन ज्ञानीगण करते हैं। इसका तात्पर्य है- काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को ज्ञान के द्वारा दूर करके ज्ञानिगण निर्विषय होकर आत्म कल्याण करने में सक्षम होते हैं। योगी, महात्मा भक्त एवं सात्विक व्यक्तिगण दिन-रात इस प्रकार पशु मांस द्वारा हवन करके सावधान होकर रहते हैं।

अर्थात् क्रोध जयकारी व्यक्ति समस्त इन्द्रिय को जयकर शमदम तितिक्षा श्रद्धायुक्त होकर बुद्धि के द्वारा मन को परब्रह्म में निवेश करके, ज्ञानाग्नि को उत्पन्न करके जन्म जन्मानतर उपार्जित पाप को विनष्ट करके मुक्त होता है। महात्मागण अजेय काम क्रोधादि पशु को असङ्ग शस्त्र के द्वारा वध करके हवन कर्म सम्पादन करते हैं। यह ही आध्यात्मिक यज्ञ है। इसी को पशु यज्ञ कहते हैं, न तो पशु को वध करना। कारण समस्त धर्म हिंसा की निषेध करते हैं।

"श्येनेन अभिचरण यजेत" इस प्रकार वेद में श्येन याग का वर्णन है। यहाँ पर आध्यात्मिक यज्ञ पर व्याख्या है। लोक व्यवहार में चिल, वाजपक्षी को श्येन कहते हैं। श्यने शब्द से आत्मा का बोध होता है एवं गीध गृध्र शब्द का अर्थ भी इन्द्रिय है।

वैदिक कोश निर्घण्टु ग्रन्थ में वर्णन है -

मृगानां मार्गेण कर्मणामिन्द्रियाणामिति श्येन आत्मा भवति। श्यायते ज्ञान कर्मणोः। गृध्राणि इन्द्रियाणि गृध्यते ज्ञानकर्मणोर्यत् एतास्मिंस्तिष्ठति। मार्गेण कर्म करणादेव – मृगः।

मृग का अर्थ–इन्द्रिय है। गृध्र पद से ग्रहणकर्ता का बोध होता है। ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय का ग्रहण करने के कारण गृध्र है। अतएव श्येन याग का अर्थ अध्यात्म पक्षपर है। इन्द्रिय समूह जिसके अधीन रहते हैं उसको श्येन कहते हैं। सब इन्द्रिय आत्माधीन हैं। अतएव श्येन शब्द से आत्मा का बोध होता है। विषय समूह से इन्द्रिय समूह को निवृत्त करने से निष्काम कर्माचरण होता है। निष्काम कर्म से चित्त शुद्ध होता है। चित्त शुद्ध होने से षड्विंशति तत्वों का ज्ञान होता है। इससे भगवच्चरणों की सेवा भावना सम्पन्न होती है। इससे भगवत प्राप्ति होती है। यही श्येन याग का वास्तविक अर्थ है। इस प्रकार भगवति दुर्गा देवी का स्वरूप आध्यात्मिक है।

भगवती दुर्गा देवी का स्वरूप आध्यात्मिक रहस्य पूर्ण है। विचित्र सिंहारुढ़, महिषासुर आरूढ़, सिंहारूढ़ रूप लोक में प्रसिद्ध है। पृथिवी के ऊपर राक्षस, उसके ऊपर सिंह, उसके ऊपर दशभुजा श्रीदुर्गा देवी विराजित हैं। राक्षस तमोगुणी है, सिंह रजोगुणी है। उसके ऊपर सत्वगुणमयी जगज्जननी दुगदिवी विराजित हैं। इस प्रकार स्वरूप से आध्यात्मिक शिक्षा मिलती है। समस्त ब्रह्माण्ड सत्व रज व तम का प्रवाह है। इससे बोध होता है कि तमोगुण रूप राक्षस को पराभूत करके सिंहरुप रजोगुण वर्द्धित होता है। उसके ऊपर सत्वगुणमयी भगवती दुर्गा देवी विराजित हैं। इस सत्वगुण से सर्वत्र सुखशान्ति विराजित होती है।

देवी के दश भुजाएं हैं, इससे यह शिक्षा मिलती है कि दश इन्द्रिययुक्त मानव दशेन्द्रिय को अपने वश में रखकर स्वेच्छाचारिता से अपने को मुक्तकर लोकहितकर कार्य में अपने को लगाकर सत्वगुण से भगवती एवं भगवान की सेवा करें। इससे सत्वगुण से मुक्त होकर विशुद्ध सत्व की प्राप्ति होती है। इससे समर्पण, सेवा, त्याग सम्पन्न होता है। जिससे भगवती और भगवान प्रसन्न होते हैं एवं समस्त स्थावर जङ्गमों में शान्ति विराजित होती है। मानव जीवन

भी धन्य होता है। श्रीमद्भागवत में उक्त है –

स वै पुंसां परो धर्मः यतोभक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति।।

यज्ञ प्रकरण विस्तृत है, उसके मध्य में नरमेध यज्ञ, इन्द्र यज्ञ, ब्रह्म यज्ञ प्रभृति का विचार करते हैं।

अश्वमेध यज्ञ – अश्व शब्द का अर्थ मेघ है, अश प्रकृतिक। इसका अर्थ उत्पादन, स्थिरीकरण, प्राणाशन, वहनशील अर्थात् सूक्ष्म वाष्प वायु। उसको अश्व कहा जाता है। अश्व का अर्थ ज्ञान, ज्ञान भवन, जयकरण, उत्पादनशील, स्थैर्यशील का, प्राणाशन का, सूक्ष्म वाष्प वायु का वहनशील अश्व का जयकर्ता जिस यज्ञ में है, उस यज्ञ को अश्वमेध यज्ञ कहते हैं।

अथवा भगवान वेद उद्धार के लिए हयग्रीव रूप धारण किये थे। जिनके मुख की आकृति भी अश्व के मुख की तरह है। यह प्रसिद्ध है। इसलिये भगवान का नाम हयग्रीव, हयानन, हयवदन, अश्वमूर्ति है। उन भगवान की आराधना जिस यज्ञ में होती है उस यज्ञ को अश्वमेध यज्ञ कहते हैं। हयग्रीव भगवान विद्या के अधिष्ठाता हैं, जिनकी उपासना से सकल विद्या की प्राप्ति होती है। कहा गया है –

"ज्ञानानन्दमयं देवं निर्म्मलस्फटिकांकृतिम्।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे।।

निर्म्मलस्फटिकाकृति ज्ञानानन्दमय देव, समस्त विद्या का आधार हयग्रीव की उपासना करते हैं।

गोमेध यज्ञ का विचार इस प्रकार है –

गोशब्द का अर्थ वाणी, इन्द्रिय, जल, भूमि, वेद, स्वर्ग, वज्र, खग, विद्युत्, सूर्य, मति, जिह्वा, धेनु, वृष प्रभृति है।

गोभिः इन्द्रियैः पुष्टं बलं बुद्धि तेजश्चैतानि सर्वाणि सत्यमिन्द्रिय प्रभृति के द्वारा, युक्ताहार विहार के द्वारा शुक्र पुष्ट होता है। इससे शुक्र का पोषण होता है। उससे बल, बुद्धि, तेज की वृद्धि होती है। उससे आयु की वृद्धि होती है। उससे सत् सन्तति की उत्पत्ति होती है, जिससे सद्गति प्राप्त होती है।

गोमेध शब्द का अर्थ विद्युत शक्ति रूप इन्द्रिय है। इन्द्रिय जय साध्य रूप यज्ञ का नाम गोमेध यज्ञ है। गोमेध यज्ञस्वरूप भगवान के निवास स्थान का नाम गोमेध है। क्षीरसागर श्वेतद्वीप में शेषशायी भगवान नारायण रहते हैं।

वह सूर्य्यमण्डल में एवं योगियों के हृदय में रहते हैं। इसलिए उनका नाम गोमेध है। गोशब्द का अर्थ सूर्य्यमण्डल भी है।

इस प्रकार **नरमेध** यज्ञ भी है। संसार में गमनागमन निरोध करने के लिए जो यज्ञ किया जाता है, उसको नरमेध यज्ञ कहते हैं। अथवा पुत्र प्राप्ति के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पादन हेतु नराकार औषधि के द्वारा हवन किया जाता है, उसके बाद उस औषधि के सेवन को नरमेध यज्ञ कहते हैं।

इन्द्र यज्ञ – वर्षा के लिये जो यज्ञ किया जाता है, उसको इन्द्र यज्ञ कहते हैं। अथवा मेघ विद्युत् जल प्राप्त करने के लिये जो यज्ञ किया जाता है उसको इन्द्र यज्ञ कहते हैं। यह यज्ञ वृष्टि सम्पादक है।

ब्रह्मयज्ञ – जिसके द्वारा वर्द्धनशील कर्षण शक्ति होती है। उससे तेज वृद्धि होती है। वह यज्ञ ब्रह्म यज्ञ है। वस्तुतः यज्ञ समाकर्षण शक्ति को प्राप्त कराता है। जैसे सूक्ष्म से स्थूल, परोक्ष से प्रत्यक्ष वस्तु उत्पन्न होती है। परिवर्तन भी होता है, रक्षित होता है। वह शक्ति व्याप्य–व्यापक भाव से सर्वदा समाहित होकर रहता है।

सुनने में आता है कि प्राचीन काल में यज्ञ में पशुवध होता था। कारण उस समय यज्ञ का ही प्राधान्य था।

यद्यपि यज्ञ में पशु का आलम्भन वेद सम्मत नहीं है। तथापि मांसास्वाद् लोलुप व्यक्तिगण पशुवध करते थे। वहाँ पर पशु हिंसा अवश्य होता था। उस समय मांस भक्षण का प्रचार अत्यधिक था, इसलिए यज्ञ कार्य में पशु वध होता था। यज्ञ के बहाने हिंसक जन्तु की तरह मनुष्यगण भी मांस भक्षण पशु हिंसा के द्वारा करते थे। जिस हिंसा कार्य को बन्द करने के लिये ही एवं अहिंसा धर्म का व्यापक प्रचार करने के लिये भगवान बुद्ध रूप में अवतीर्ण हुए थे। अहिंसा के व्यापक प्रचार–प्रसार के द्वारा उन्होंने पशुवध युक्त यज्ञ की निन्दा की थी। उस समय यज्ञ में पशु हिंसा बन्द तो हुआ परन्तु मांस लोलुप व्यक्तिगण उस हिंसा कार्य से विरत नहीं हुए। जिसका प्रभाव आज भी वर्तमान है।

इस प्रकार रूढ़िवादी विचारधारा को रुद्ध करने के लिये शेषावतार भगवान् श्रीरामानुजाचार्य धराधाम में अवतीण हुए थे। उन्होंने अनुयायियों के साथ सजीव पशु हिंसा युक्त यज्ञ का निषेध तो किया, यज्ञ के बाहर भी पशु हिंसा का निरोध किया।

हिंसामूलक यज्ञविधि का परिष्कार करके अहिंसा यज्ञ विधि का उन्होंने प्रतिपादन किया। श्रुतियों की मीमांसा जन समाज में स्थापन करने का प्रयास

भी उन्होंने किया। यज्ञ में सजीव पशु के स्थान पर पिष्टक मांस चूर्ण पशु का आलम्भन पशु यज्ञकारियों के लिये प्रवर्तन किया। इस रीति से श्रुतियों का प्रामाण्य भी सुरक्षित हुआ एवं पशु हिंसा से उत्पन्न पाप से मुक्त यज्ञ कारीगण हो गये।

वस्तुतः यज्ञ में पशुवध सर्वथा निषिद्ध है, कारण श्रुति कहती हैं – मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि। इससे ही यज्ञ में पशुवध निरस्त हुआ।

वेद में **"अग्निसोमीयं पशुमालभेत्"** इस प्रकार वचन उपलब्ध है। इस श्रुति का सम्यक् अर्थ न जानने के कारण अनर्थ हुआ। यथा श्रुत अर्थ करने के कारण अनर्थ हुआ और पशुस्थ अग्निदेवस्य सोमदेवतायाश्चेति इस प्रकार अर्थ मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर सबको भ्रान्त किया। श्रुतियों के पारस्परिक विरोध को परिहार करके ही मीमांसा शास्त्र वास्तविक अर्थ प्रकाश करते हैं। उक्त श्रुतिद्वय का विरोध होने पर मीमांसा शास्त्र के अनुसार निर्णय किया जाता है। वहाँ याग पशु मांस चूर्ण निर्म्मित आकृति को समझना होगा। इस विषय में प्रजापति स्मृति वचन प्रमाण है–

"अतो मासान्न मे तन्मात्रे विधिनाकृतम्।
पितरस्तेन तृप्यन्ति श्राद्धं कुर्वन्ति न तद्विना।।

विधाता ने मांस के स्थान में मासान्न का विधान किया है। जिससे पितृगण पूर्ण तृप्त होते हैं। अतएव जहाँ श्रुतियों में पशु आलम्भन का उपयोग है वहाँ पर पिस्टी मासान्न को जानना होगा।

यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि जड़ीय पदार्थ मांस चूर्ण द्वारा निर्मितपशु आकृति वध कैसे सम्भव होगा? यहाँ पर प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न से ही उत्तर हो जाता है। कारण चेतन पशु छाग, वृष, अश्व प्रभृति आलम्भन कहा गया है, वहाँ पशु का शरीर जड़ात्मक है। उसके शरीर का छेदन होता है, वह जड़ है। चेतन का छेदन तो होता ही नहीं, वह नित्य है। नित्य का आलम्भन सर्वथा असम्भव है, उपहास्यास्पद भी है। आत्मा का बध शस्त्र वा अग्नि के द्वारा सम्भव नहीं है, कारण आत्मा अतिसूक्ष्म रूप है। आलम्भन शब्द का हिंसा अर्थ करना सर्वथा अनुचित है, निन्दनीय भी है। वस्तुतः आलम्भन शब्द का अर्थ आकृति का विघटन करना होता है। यह लक्षणा वृत्ति द्वारा होता है। हन् धातु हिंसा अर्थ में प्रयोग होता है। उसका अर्थ लक्षणा के द्वारा अपकार एवं विघटन भी होता है। प्रयोग इस प्रकार होता है –

घटी हतो, मया हतः, यहाँ देवदत्त हतः घट का आकार विघटित हुआ, देवदत्त का आकार विघटित हुआ, देवदत्त का अपकार किया। किन्तु प्राणनाश

नहीं किया। कहा जाता है – "सुरभि तनया गावः, तासां आलम्भनं, प्रोक्षणं ततो जातां प्रस्तूतां भूवि च स्रोतो मूर्त्या प्रवाहरूपेण परिणतां रूपान्तर गताम् इति प्रयोगः।

यहाँ पर विचार करना आवश्यक है। आलम्भन शब्द का अर्थ – पाणिनी व्याकरण के अनुसार डुलभष् धातु भ्वादिगणीय है। इसका रूप लभते होता है। इस धातु का अर्थ प्राप्ति है, अन्य अर्थ नहीं है। प्रेरणार्थक लभ् धातु भी है। मैत्रायाणि संहिता, सायण भाष्य, चान्द्रव्याकरण, जैनेन्द्र व्याकरण, काशकृत्स्न व्याकरण, कातन्त्र व्याकरण, शाकटायन व्याकरण, हेमचन्द व्याकरण, हरिनामामृत व्याकरण में भी सर्वत्र प्रेरणार्थक रूप से स्वीकृत है, किन्तु हिंसादि रूप में नहीं। कोष के अनुसार धातुद्वय का प्रयोग प्रेरणार्थ में हुआ है।

यजुर्वेद ३०-५ में आलभन शब्द का अर्थ प्राप्ति है।

१. ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभते – ज्ञानाय ज्ञानी प्राप्यते।

२. क्षत्राय राजन्यं आलभते – शौर्य्याय शूरः प्राप्यते।

३. नृत्ताय सूतं आलभते – नृत्य कर्म्मणो सूतमाह्वायति।

४. धर्माय समाचरं आलभते – धर्माया धर्म सभायाः सदस्याः प्राप्यन्ते।

इस प्रकार स्मृति एवं गृह्य सूत्र में आलभन शब्द का स्पर्श अर्थ में प्रयोग हुआ है।

१. मीमांसा दर्शने (२.३.१७) सुबोधिनी टीकायाम् – आलभ्यः स्पर्शो भवति।

२. ब्रह्मचारिण धर्म प्रसङ्गे – वर्जयेत् स्त्रीणां प्रेक्षणालम्भनम् अर्थात् ब्रह्मचारि स्त्री का दर्शन स्पर्श न करे। (निषेध) मनुस्मृति २७९

३. उपनयन संस्कारे – अथास्य ब्रह्मचारिणः दक्षिणांशं अधिहृदयं आलभते आचार्यः।

ब्रह्मचारि के हृदय का स्पर्श आचार्य करते हैं।

(गृह्य सूत्र २-२-१६)

४. विवाह संस्कारे – वरो वध्वा दक्षिणांशं अधिहृदयं आलभते। वर वधू के दक्षिण स्कन्ध के उपर भाग को हाथ से स्पर्श करता है। (गृ.सू. १-८-८)

५. वेदोपवृंहणभूत महापुराणेषु श्रीमद्भागवत पुराणे एतत् विषये महत् प्रमाणं – यत् यज्ञे पशोः आलम्भनस्य अर्थो न हिंसा। यया यदघ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तया पशोरालम्भनं न हिंसा। (भा.पु. ११-५-१३)

अर्थात् यज्ञ में सुरा का घ्राण लेना है, पान करना नहीं है। यज्ञ में पशु का आलम्भन–स्पर्श ही करना है, हिंसा करना नहीं है।

६. स्पर्श शब्दो दानार्थेऽपि प्रयुज्यते यथा। (रा.म.का. (२–४९)

कोटिशः स्पर्शयता घटोघ्नीः। यहाँ पर स्पर्शयता का प्रयोग दान अर्थ में हुआ है।

श्रुति में आलम्भन शब्द का प्रयोग जहाँ पर देखने में आता है, वहाँ पर यह पशु की आकृति का विघटन करना ही समझना होगा। जीवित पशु का वध कभी भी सम्भव नहीं है।

धर्मशास्त्र प्रधान मनुस्मृति ग्रन्थ में जहाँ पर मांस भक्षण निषेध हो वहाँ पर पशु हत्या का भी निषेध किया गया है।

अतएव आस्तिक व्यक्ति आत्म कल्याण के लिए हिंसा वृत्ति से विमुख होकर जीवन यापन करे, यही श्रेयस्कर है। कारण भगवत् प्राप्ति के लिये अहिंसा वृत्ति ही प्रथम सोपान है, इसका वर्णन शास्त्र में है।

गीताचार्य भगवान श्रीकृष्ण भगवद्गीता में सुस्पष्ट रूप से कहे हैं – जीवात्मा अतिसूक्ष्म है, शस्त्र से छेदन नहीं किया जा सकता, अनल से दग्ध नहीं किया जाता, वायु से शोषण करना, जल से भिगोना सर्वथा असम्भव है। जीवात्मा में शस्त्रादि का प्रवेश सर्वथा असम्भव है। इसलिए वह सर्वथा अवध्य है। इस नित्य स्वरूप का अवधारण करने पर सर्वथा भय मिट जाता है। महाभारत के शान्ति पर्व में उपरिचर वसु उपाख्यान के प्रसङ्ग में कहा गया है – यज्ञ में विधिवत् अन्नादि का ही प्रयोग करना चाहिये। किसी प्रकार से छागादि प्राणियों का वध नहीं करना चाहिये।

निरुक्तकार यास्काचार्य ने निरुक्त में कहा है – हिंसा मार्ग से तपस्या करके विद्या को परित्याग करके तीव्र तपस्या करने पर भी धूम मार्ग से गमन करके पुनर्वार मृत्युलोक को प्राप्त करता है। मुक्त नहीं होता। महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी कहा है – जो लोक धर्म विरुद्ध लोकविरुद्ध आचरण करता है वह स्वर्गलोक को प्राप्त तो करता ही नहीं, मोक्ष को कैसे प्राप्त करेगा। इसलिये हिंसात्मक यज्ञ को लोक विरुद्ध जानकर आचरण न करे, वह कल्याणप्रद नहीं है। तन्त्रादि ग्रन्थों में मद्यमांसादि पान भोजन का विधान को देखकर जो व्यक्ति उसका आचरण करता है, वह उसका अर्थ नहीं समझता। वहाँ पर उसका अर्थ विलक्षण होता है, वह पारिभाषिक अर्थ है, उसका जानकारी करना आवश्यक है।

यहाँ पर गोमांस भक्षण का विचार करते हैं-

"गोमांस भक्षयेन्नित्यं पिवेदमर वारुणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये तदन्ये कुलघातकाः।।

इस वचन का अर्थ समझना चाहिये-

गोशब्द का अर्थ जिह्वा है, गो पशु नहीं है। जिह्वा का तालु में प्रवेश कराना ही गोमांस भक्षण है। कहा गया है- इष्ट देवता का ध्यान एवं आराधना करने के लिये जिह्वा को तालु में निवेश करके मन्त्र जप का नाम गोमांस भक्षण है। कहने का अभिप्राय यह है कि - उपांशु जप के द्वारा उपासना करने के लिए यह विधि है, गो जिह्वा का तालु देश में स्थापन करके मन्त्र जप पर्य्यन्त अवस्थान करने से उपांशु जप होता है। इससे देवता सत्वर प्रसन्न होते हैं। **तज्जपस्तदर्थ भावनं**, अर्थ भावना को ही जप कहते हैं। मन्त्र जप के समय तल्लीन होकर जप का विधान है, इस प्रकार प्रक्रिया करने वाले योगी को कुलीन कहा जाता है, गोमांस भक्षणकारी को कुलीन नहीं कहा जाता है।

अमर वारुणि पान का अर्थ भी इस प्रकार है -

जिह्वा प्रवेश सम्भूतः बह्निनोत्पादितरन्ध्र।
चन्द्रात्सुवति यः सारः स स्यादमरवारुणी।।

जो योगी खेचरी मुद्रा का अभ्यास करता है, वह अपनी जिह्वा के तलदेश के स्नायु को धीरे-धीरे छेदन करता है। इससे जिह्वा तालु देश में प्रवेश योग्य होती है। इसके बाद जिह्वा को तालुदेश में स्थापन करता है। तालु के छिद्र से मस्तक से एक विलक्षण रस निसृत होता है। उस रस का पान योगी करता है। उसको ही अमर वारुणी कहते हैं। अमर वारुणी रस पान का विवरण योग शास्त्र में है।

इस रीति से गोमांस भक्षणकर्ता अमरवारुणी पानकर्ता श्रेष्ठ कुलीन होता हैं, वह अपने कुल का उद्धार करता है।

बाल विधवा बलात्कार का विवरण इस प्रकार है -

गङ्गा यमुनयोर्मध्ये बालरण्डा तपस्विनीम्।
बलात्कारेण गृह्णीयात् तद्विष्णोः परमं पदम्॥

गङ्गा यमुना के मध्य में एक बाल विधवा तपस्विनी रहती है। इसके साथ बलात्कारी मोक्ष प्राप्त करता है।

उपरोक्त श्लोक में गङ्गा, यमुना, बलात्कार एवं विधवा स्त्री का उल्लेख है। इसका रहस्य इस प्रकार है -

**"इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
इडा पिङ्गलयोर्मध्ये बालरण्डास्तिकुण्डली।।"**

शरीर की इड़ा नाड़ी को गङ्गा कहते है। एवं पिङ्गला नाड़ी को यमुना। उनके मध्य में कुण्डली नाड़ी रहती है। कुण्डली के दो नाम हैं – सुषुम्ना एवं बालविधवा (बालरण्डा)। ग्रहण करने के अर्थ में बलात्कार शब्द का प्रयोग होता है, व्यभिचार अर्थ में नहीं। सुषुम्ना, कुण्डली, बालरण्डा ग्रहण से मन सुषुम्ना में अवस्थित होता है। योगशास्त्र में इसको भगवदुपासना कहते हैं। योगी योगशास्त्र के अभ्यास से (बलात्कार से) कुण्डलिनी का जागरण करता है, यही भगवदुपासना है। इस रीति से बालरण्डा का बलात्कार अर्थात् ग्रहण वर्णन किया गया है। इस प्रकार योग क्रिया से ही मुक्ति होती है।

इस प्रकरण के गोमांस भक्षण शब्द, अमरवारुणीपान शब्द, अमरवारुणी रसपान शब्द, बालरण्डा गमन, बलात्कार शब्द पारिभाषिक है। योगशास्त्र में इसका सम्यक विवरण है। यह योगी का विषय है। लौकिक विषय नहीं है। अतएव विषये वासना के अनुसार विरुद्ध अर्थ लौकिक अर्थ करना ठीक नहीं है। इसका अवधारण करना आवश्यक है।

**"पुराणं मानवो धर्म साङ्गवेद विचिकित्सिकम्।
आज्ञा सिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः।।**

पुराण, धर्मशास्त्र, मनुस्मृति प्रभृति, साङ्गवेद समूह, चिकित्सा शास्त्र, सत् उपदेश प्रदानकारी हैं। इन सबकी आज्ञा का लङ्घन कभी भी नहीं करना चाहिये।

उपनिषद् में जो मांस शब्द का प्रयोग है, वह पशु मांस पर नहीं है, किन्तु औषधि विशेष का मांसल अंश विशेष है। इस प्रकार मन्त्र में उक्षा शब्द, वृषभ शब्द का अर्थ वृष नहीं है, किन्तु औषधि विशेष है।

जिस प्रकार प्राणियों में अस्थि, मज्जा प्रभृति प्रसिद्ध है, उस प्रकार वनस्पतियों में भी मांस, अस्थि मज्जा प्रभृति का व्यवहार प्रसिद्ध है। आयुर्वेदीय सुश्रुत संहिता ३-३२ में इसका वर्णन है। जिस प्रकार आम फल में, केशर मांस अस्थि प्रभृति का वर्णन होता है। च्यवनप्राश के अष्टकवर्ग में जीवक ऋषभ शब्द का प्रयोग हुआ है। दोनों रसायन निर्माण में प्रयोग होते हैं।

उक्षा का अर्थ रेतः सेचन समर्थ है। उसका पर्याय शब्द जीवक ऋषभ का प्रयोग है। यह बलवीर्य वर्द्धनकारी रसायन है। वीर्य को जीवन कहते हैं –

**"चित्ताधीनं नृणांशुक्रं शुक्राधीनञ्च जीवनम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः।।"**

वीर्यवर्द्धक, जीवनदायी होने के कारण उक्षा को जीवक कहते हैं। इस प्रकार वृषभ भी बलवीर्यवर्द्धक औषधि है, दोनों ही हिमालय शिखर में उत्पन्न होते हैं।

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रि शिखरोद्भवौ।
रसोनकन्दवत् कन्दौ निःसारैः सूक्ष्म पत्रकौ।
जीवक कूर्चकाकारः ऋषभी वृषश्रृङ्गवत्।।

गोमांस का भक्षण विचार प्रदर्शित हुआ।

गो के विषय में वेद में भी इस प्रकार वर्णन है, इससे गोवध के विषय में भ्रम विदूरित होगा।

१. गो अहन्या - हननायोग्या, अहन्तव्या। गोवध के योग्य नहीं है।

२. अही अबध्या - अहन्तव्या

३. अदिति (अ+दिति), अच्छेद्या, अखण्डनीया। यहाँ यज्ञ के प्रसङ्ग में अहिंसा का कथन हुआ है। गोवध के योग्य नहीं है, इस विषय में महाभारत के शान्ति पर्व में लिखित है -

"अहन्या इति गवां नात्र क एतां हन्तुमर्हति।
महच्चकारा कुशलं बृषं गां वा लभेत्तु यः।।

अर्थात् गो सर्वथा वध के योग्य नहीं है। जब यह गो कभी भी वध के योग्य नहीं है, तब कौन इसका वध करेगा। यह निषेध विधि है। यहाँ शब्द का वाचक अध्वर है। जिसका अर्थ अहिंसा है। ध्वर शब्द हिंसा वाचक है। ध्वरा हिंसा उसका अभाव जहाँ है, उसको अध्वर कहते हैं। इस प्रकार से प्रमाणित हुआ कि यज्ञ मेधादि में किसी भी रीति से हिंसा नहीं करनी चाहिये।

मेधृ धातु हिंसा सङ्गमन में है। मेधृ शब्द के तीन अर्थ होते हैं। १. बुद्धि वर्द्धन, २. सङ्गतिकरण, ३. हिंसा। इसके अर्थ में यद्यपि हिंसा का उल्लेख है, तथापि वर्द्धन एवं सम्मेलन भी अर्थ है, अतएव गोवर्धन एवं गो की सङ्गतिकरण अर्थ बलवान है। तीन के अर्थ के स्थान में दो अर्थ बलवान है। मेध शब्द के तीन अर्थ हैं। इसकी मीमांसा होनी चाहिए। गोमेध शब्द से किस अर्थ का ग्रहण समीचीन होगा। अहिंसा वाचक अध्वर शब्द के साहचर्य से गोहिंसनार्थ पृथक होगा, किन्तु दो अर्थ अवशेष रह जाते हैं। गोसंवर्धन एवं सङ्गतिकरण के साथ वध करना विरुद्ध पड़ता है। इसलिये गोहिंसा किसी भी तरह समीचीन एवं व्यवहारिक नहीं होता है। वेद में भी गोवध निषेध वचन है। गां मा हिंसोरदितिं विराजम्-४२। घृतं दुहानामदितिं जनाय मा हिंसीः ४९-यजुर्वेदः १३।

तेजस्विनी गौरवध्या – अहिंसा भवतो वा गौश्चअनुपमेया। वेदस्याभिमदमिदं यत् सर्वेषां पदार्थानामुपमा सुलभा, न तु गोः गौश्च यादृशमुपकारं समस्त मानवजातेः कृतवान् न तादृशमन्यः।

गो सर्वथा अवध्य है, समस्त पदार्थों की उपमा है, किन्तु गो की उपमा नहीं है। मानव जाति का उपकार गो से जिस प्रकार होता है, उस प्रकार अन्य से नहीं। यजुर्वेद में लिखा है –

"ब्रह्म सूर्य्य समं ज्योति द्यौः समुद्र समं सरः।
इन्द्र पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते।।"

अर्थात् ज्ञान एवं तेज में सूर्य्य उपमा है, आकाश की उपमा समुद्र है, पृथिवी विशाल है, उसकी अपेक्षा इन्द्र अधिक समर्थ है, किन्तु '**गोस्तु मात्रा न विद्यते**' अर्थात् गो के साथ किसी की तुलना नहीं हो सकती है। यह मन्त्र भी गो हिंसा का विरोधक है।

"दुहा अश्विभ्यां पयो पयो अहन्य" ऋग्वेद १-६४-२७, वर्द्धतां महते शौभगाया।

यह गो सर्वथा अवध्य है, देवता के लिये दूध देने वाली है। हम सबके मङ्गल के लिये सर्वदा विराजित है। "**सा अहन्या वर्द्धताम्।**" इस मन्त्र में कहा गया है कि गो अवध्य है। वह सदा वर्धित हो। सबके वृद्धि के लिये गो का विद्यमान रहना परम आवश्यक है। इससे गो की हिंसा करना सर्वथा निषिद्ध है। मांसलोभी मानव यज्ञ में हिंसा निषिद्ध होने पर भी यज्ञ के बाहर हिंसा करने का विधान देते हैं, मांस लोलुप व्यक्ति इस प्रकार करते हैं। जिसका पूर्णरूप से निषेध श्रीमद्भागवत महापुराण में हुआ है। मांस लोलुप के द्वारा प्रवर्तित वध कार्य का निषेध श्रीभागवतकार करते हैं –

"ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः।
हिंसायां यदि रागः स्यात् यज्ञ एव न चोदना।।

हिंसात्मक यज्ञ करने की आसक्ति इसलिये होती है क्योंकि वे सब मांस लोलुप हैं। श्रीमद्भागवतम् का यह वचन विधि वाक्य नहीं है, किन्तु निषेध वाक्य है। यह प्रतिबन्धात्मक विधि है, किन्तु कर्तव्य विधि नहीं है।

इसके आगे श्रीमद्भागवत महापुराण में कथित है –

"हिंसा विहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया।
यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूत पतीन् खलाः।।

हिंसाशील हिंसाविहारी व्यक्ति दुष्टतावश निजसुखवासना एवं इन्द्रिय तुष्टि बुद्धि से पशु को मारकर उसके मांस से यज्ञ करता है। पितृ, भूत प्रभृति को सन्तुष्ट करने के लिये बाहर आडम्बर दिखाना है। कारण वह मांसाशी है। अतएव महाभारत के शान्ति पर्व में सुस्पष्ट लिखित है कि यज्ञ में मांस भक्षण का प्रचलन धूर्त्तों ने किया है। वेद में यह विधि नहीं है -

सुरामत्स्या मधुमांसमासवं कृसरोदम्।
धूर्त्तैः प्रवर्त्तितं ह्येतन्नैतद वेदेषु कल्पितम्।।
वीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अज संज्ञानि वीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ।।
नैष धर्मः सतां देवा यत्र वै वध्यते पशुः।

(म.शा.प. ३३७-४-५-३२४-४-५)

मद्य मांस मत्स्य मधु कुत्सित भात का भोजन करने का प्रवर्तन धूर्त्तों ने किया है। वेद में इसका विधान नहीं है। वैदिक श्रुति है, बीज से ही यज्ञ कार्य करे। अज शब्द से बीज को जानना होगा छागल को नहीं। इसलिये छागल का वध करना अनुचित है। यह धर्म सज्जनों का नहीं है। इससे वहाँ देवता संतुष्ट नहीं होते हैं, जहाँ पर पशु वध होता है।

इसलिये लोकहित एवं विश्वहित के लिए सर्वथा सदा अहिंसा परम धर्म का आचरण करना कर्त्तव्य है।

केवल भारतीय धर्म शास्त्रों में ही नहीं अपितु ईसाई धर्म में भी अहिंसा का वर्णन है, हिंसा का पूर्ण निषेध है।

"He that killen an ox is if he slew a man"

अर्थात् जिसने गोवंश की हत्या की उसने मनुष्य की ही हत्या की।

अङ्ग्रेजी भाषा कोश के अनुसार OX शब्द गोवंश के स्त्री व पुरुष उभय का ही बोधक है।

इस प्रकार मुस्लिम धर्म में भी हिंसा का निषेध है।

(अल गजाली) (१०५८-११११ ईसवी) २८ वर्ष में बगदाद में इस्लामिया इंस्टीट्यूट का निर्माण हुआ। निर्माणकर्ता ने अरबी भाषा में (धर्म का सार) इह उलुमअलदीन नामक एक पुस्तक की रचना की, जो कि पवित्र कुरान के समान मान्यता प्राप्त है। इसका उर्दू भाषा में अनुवाद के साथ लखनऊ, उ. प्र. से प्रकाशन हुआ। नवल किशोर प्रकाशन ने मजाकुल आरमिन नाम से इसको

प्रकाशित किया। इस पुस्तक के १९५५ ई. संस्करण के द्वितीय खण्ड के २३ पृष्ट पर १७-१९ में गोमांस का दोष एवं गोदुग्ध घी का गुण वर्णन है। वहाँ पर गोमांस से रोग एवं गो दुग्धादि से आरोग्य का वर्णन है।

यहाँ पर विविध भाषा धर्म सम्प्रदाय के मत से गोमांस भक्षण निषेध का प्रतिपादन किया गया है। विभिन्न संस्कार से प्रेरित होकर वेद मन्त्रों का गोमांस भोजन पर व्याख्या करते हैं, उसका भी समाधान सप्रमाण किया गया है। यहाँ प्राचीन ग्रन्थों का उद्धरण इसलिये दिया गया है, जिससे ज्ञान होगा कि प्राचीन भारत में गोमांस भक्षण का प्रचलन नहीं था।

उक्षान्न वसान्न शब्द का भी सुन्दर समाधान किया गया है। इस श्रुति का अर्थ गोमांस पर किया गया है।

अंग्रेजी भाषा की पुस्तक वैदिक इण्डैक्स के द्वितीय खण्ड के १४५ पृष्ठ में मैकडानेल महोदय एवं कीथ महोदय ने लिखा है – वैदिक ग्रन्थों में मांस भक्षण का विधान है। उसमें पशु हिंसा निषेध का उल्लेख नहीं है। उदाहरण भी है, देवगण मांस भक्षण करते थे। इसलिये देवार्चन में मांस का प्रयोग समीचीन है। ब्राह्मण भी मांस भक्षण करते थे। इसलिये वैदेशिक ने उक्षान्न गोभक्षी वसान्न, ऋग्वेद (८-४३-११) से उद्धरण दिया है, जिसका सुन्दर समाधान किया गया है।

इस प्रकार वी.एस. आप्टे महोदय ने अंग्रेजी भाषा की पुस्तक में वैदिक काल के अध्ययन अध्याय के १९-५०-३८९ में लिखा है विवाह में गोहत्या एवं गोमांस भक्षण पूर्वकाल में प्रचलित था। यहाँ पर समाधन इस प्रकार है – स्वर्गीय पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर महोदय ने गोज्ञान कोष के प्राचीन खण्ड वैदिक विभाग का प्रथम खण्ड के ११ पृष्ठ में लुप्त तद्धित क्रिया को प्रदर्शित करते हुए कहा है – वेद मन्त्रों में इस प्रकार के मन्त्र समूह हैं, जिसका शब्दार्थ तात्पर्य के द्वारा अन्य प्रकार होता है। जैसे ऋग्वेद के (६-४६-८) में उक्त है "गोभिः श्रीणीतं मत्सराम्" इसका अर्थ मुख्यार्थ से तात्पर्य्यार्थ अन्य प्रकार है।

गो हिंसा को छोड़कर जनता की रुचि गोरक्षा में होने से मानव समाज का कल्याण है कारण गो निरपराधी एवं उपकारी है।

श्री श्री गौर गदाधरौ विजयेताम्

गवामृतम्

महाभारत में यक्ष का प्रश्न है - अमृत क्या है? अमृतं किं स्विद्? राजेन्द्र, इसके उत्तर में महाराज युधिष्ठिर कहते हैं - गवामृतम्। गाय का दूध अमृत है।

भैंस के दूध में कोलेस्ट्रॉल पाया जाता है, जो रक्तवाहिनी नाड़ी में जम जाता है। जो हृदय गति रुद्ध होने का कारण है। इसके विरुद्ध गाय के दूध में केरोटीन पदार्थ पाया जाता है जो पीले रङ्ग का होता है। इससे आँखों की ज्योति बढ़ती है, हृदय पुष्ट होता है, इससे हृदय गति रुद्ध नहीं होता है।

गाय का दूध बुद्धि को बढ़ाता है, भैंस का दूध मोटापा बढ़ाता है। गाय के दूध में ४ से ५ प्रतिशत चिकनाई होती है जबकि भैंस के दूध में ५ से ६ प्रतिशत चिकनाई होती है। अधिक चिकनाई प्राप्त करने के लिए लोग गाय के दूध के स्थान पर भैंस का दूध प्रयोग करते हैं। किन्तु विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार मानव शरीर के लिए ४ से ४.५ प्रतिशत चिकनाई यथेष्ट है। इससे अधिक चिकनाई मानव शरीर के लिये हानिकारक है, अतएव भैंस का दूध लाभकर के स्थान पर हानिकारक हैं।

यहि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे बड़े होकर महान् बने तो उन्हें बुद्धिबर्द्धक गाय का दूध पीने के लिये देना चाहिये। गाय का दूध पीने से न केवल हम निरोगी एवं बुद्धिमान बनेंगे वरन् गाय का भी महत्व बढ़ेगा। गाय की प्रयोजनीयता बढ़ने से ही गाय के प्राणों की रक्षा होगी और देश की उन्नति होगी।

देखने में आता है भैंस के बच्चे को खींचकर ले जाना पड़ता है और गाय का बच्चा उछलते-कूदते हुए जाता है। भैंस के बच्चे को दूध पीने के लिए छोड़ने पर अपनी माँ को पहचानता नहीं, जबकि गाय का बच्चा हजार गायों में भी अपनी माँ को ढूँढ़ लेता है। इससे प्रतीत होता है कि भैंस का दूध अपने बच्चे को देने से वह सुस्त एवं मन्द बुद्धि का होगा तथा गाय का दूध पीने से बच्चा गाय के बछड़े की तरह बुद्धिमान एवं स्फूर्ति सम्पन्न होगा।

अत: दूध के नाम पर जहर पीना नहीं चाहिये। गाय का दूध ही पीना चाहिये। दूसरे लोगों को भी गाय का दूध पीने के लिये प्रेरित करना चाहिये। यज्ञ, हवन, पूजा के दीपक में भी गाय के घी का ही प्रयोग करना चाहिये। खेती में रासायनिक खाद के स्थान पर एवं कीटनाशक औषधि के स्थान पर गोबर की खाद एवं गोमूत्र से निर्मित औषधि कीटनाशक के रूप में प्रयोग करें। निरोग रहने के लिये गोमूत्र से निर्मित औषधियों का सेवन करना चाहिये।

भैंस के दूध के नाम पर जो दूध लोग प्रयोग करते रहते हैं, वह क्या है? वे पेन्ट, यूरिया आदि के द्वारा बनाया हुआ सिन्थेटिक दूध है। बाजार से जो दूध खरीदते हैं, उसमें १५ प्रतिशत में आक्टीटोसिन इंजेक्शन का प्रयोग रहता है। वह जहर है। इससे कैंसर, गर्भपात, बाँझपन, हृदयरोग, डायबिटीज, दमा, टी. बी. आदि रोग होते हैं। यह आक्सीटोसिन द्वारा प्राप्त दूध के सेवन से होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार ऐसे दूध के सेवन से आज माता के स्तनों में विष की मात्रा २१ गुना अधिक हो जाती है। माता के द्वारा ही नवजात शिशुओं में विष पहुँच रहा है।

गाय के गोबर-गोमूत्र से हमें आवश्यक खाद प्राप्त होती है। ऐसी खाद जिसके प्रयोग के पश्चात् कीटनाशक (पेस्टीसाइड) डालने की आवश्यकता नहीं होती। गाय के गोबर के खाद से उत्पन्न खाद्य-सामग्री रोग रहित, पौष्टिक एवं सुस्वादु होती है। आज जो अन्न, दाल, सब्जी आदि में स्वाद नहीं रहा, वह इसलिए कि वे रासायनिक खाद एवं पेस्टीसाइड से उत्पन्न किये जाते हैं। रासायनिक खाद एवं पेस्टीसाइड के प्रयोग से आज भूमिगत जल भी जहरीला हो गया है तथा जमीन बंजर होती जा रही है।

गाय ऊसर बंजर जमीन पर रहती है तो उसके गोबर मूत्र से वह बंजर जमीन भी उपजाऊँ हो जाती है। ऐसी परम उपयोगी, पूजनीया गाय को आज प्रतिदिन लाखों की संख्या में काटा जा रहा है। यदि ऐसा ही चलन रहा तो वह दिन दूर नहीं, जब देश का गोवंश पूरी तरह समाप्त हो जायेगा।

अत: हम सब संकल्प लें कि देश की अस्मिता तथा गौरव की प्रतीक गाय की कद्र होगी। अर्थात् हम गाय पालें अथवा गो ग्रास निकालें, गाय का दूध पीयें और हवन, दीपक आदि में गोघृत का प्रयोग करें, यही गो की पूजा होगी।

भारत में अर्थतन्त्र का आधार कृषि है, कृषि का आधार गो है। खेतों की

उपज का वह भाग जो मानव नहीं खाता, उस नीरस भूसे आदि को खाकर गाय हमें सुपाच्य दूध देती है। जन्म देने वाली माँ तो बच्चे को साल दो साल दूध पिलाती है, परन्तु गाय तो हमारा सम्पूर्ण जीवन लालन-पालन करती है। इसीलिये तो वह गोमाता कहलाती है। गो चौरासी लाख योनियों में अकेली ऐसा प्राणी है जिसका गोबर न केवल उर्वरक है, अपितु पूजा स्थल को भी जिसके लेपन द्वारा शुद्ध किया जाता है। पंचगव्य, पंचामृत सामग्री का मौलिक उपादान गो ही है।

गो ही अकेली ऐसी प्राणी है, जिसका मूत्र गंगाजल की तरह पवित्र है। जिसमें कभी कीड़े नहीं पड़ते। गाय का घी ऐसा हविः जिससे यज्ञ में आहुति देने से देवता सर्वाधिक प्रसन्न होते हैं, वातावरण शुद्ध रहता है। गाय का घी यज्ञ अथवा दीपक में जलाने से ऑक्सीजन गैस निर्मित होती है, जो हमारे प्राण वायु हैं। गाय ही इस सृष्टि का ऐसा प्राणी है जिसके शरीर में समस्त तैंतीस करोड़ देवी देवता तथा मुनि-ऋषि निवास करते हैं। गाय को ऐश्वर्य प्रदायिनी कहा गया है। लक्ष्मी का निवास गाय के गोबर में ही है तथा गोमूत्र में गंगा का निवास है। गाय की पूजा कर लो तो समझना चाहिये कि सभी की पूजा कर ली गयी है।

नमो गोपाल देवाय वंशीवाद्यविलासिने।
गोपालनावताराय गोविन्दाय नमो नमः।।

श्रीहरिदास शास्त्री सम्पादिता ग्रन्थावली

क्रम सद्ग्रन्थ	मूल्य
१-वेदान्तदर्शनम् भागवतभाष्योपेतम्	१५०.००
२-श्रीनृसिंह चतुर्दशी	१०.००
३-श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	२०.००
४-श्रीगौरगोविन्दार्चनपद्धति	२०.००.००
५-श्रीराधाकृष्णार्चनदीपिका	२०.००
६-७-८-श्रीगोविन्दलीलामृतम्	४५०.००
६-ऐश्वर्यकादम्बिनी	३०.००
१०-श्रीसंकल्पकल्पद्रुम	३०.००
११-१२-चतुःश्लोकीभाष्यम्, श्रीकृष्णभजनामृत	३०.००
१३-प्रेम सम्पुट	४०.००
१४-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
१५-ब्रजरीतिचिन्तामणि	४०.००
१६-श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	३०.००
१७-श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश	५०.००
१८-श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	५.००
१६-श्रीहरिभक्तिसारसंग्रह	५०.००
२०-धर्मसंग्रह	५०.००
२१-श्रीचैतन्यसूक्तिसुधाकर	१०.००
२२-श्रीनामामृतसमुद्र	१०.००
२३-सनत्कुमारसंहिता	२०.००
२४-श्रुतिस्तुति व्याख्या	१००.००
२५-रासप्रबन्ध	३०.००
२६-दिनचन्द्रिका	२०.००
२७-श्रीसाधनदीपिका	६०.००
२८-स्वकीयात्वनिरास, परकीयात्वनिरूपणम्	१००.००
२६-श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००

३०-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	१००.००
३१-श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्	३०.००
३२-श्रीगौरांग चन्द्रोदय	३०.००
३३-श्रीब्रह्मसंहिता	५०.००
३४-भक्तिचन्द्रिका	३०.००
३५-प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न	५०.००
३६-वेदान्तस्यमन्तक	४०.००
३७-तत्वसन्दर्भः	१००.००
३८-भगवत्सन्दर्भः	१५०.००
३९-परमात्मसन्दर्भः	२००.००
४०-कृष्णसन्दर्भः	२५०.००
४१-भक्तिसन्दर्भः	३००.००
४२-प्रीतिसन्दर्भः	३००.००
४३-दशःश्लोकी भाष्यम्	६०.००
४४-भक्तिरसामृतशेष	१००.००
४५-श्रीचैतन्यभागवत	२००.००
४६-श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्	१५०.००
४७-श्रीचैतन्यमंगल	१५०.००
४८-श्रीगौरांगविरुदावली	४०.००
४९-श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत	१५०.००
५०-सत्संगम्	५०.००
५१-नित्यकृत्यप्रकरणम्	५०.००
५२-श्रीमद्‌भागवत प्रथम श्लोक	३०.००
५३-श्रीगायत्री व्याख्याविवृतिः	१०.००
५४-श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	२५०.००
५५-श्रीकृष्णजन्मतिथिविधिः	३०.००
५६-५७-५८-श्रीहरिभक्तिविलासः	६००.००
५९-काव्यकौस्तुभः	१००.००
६०-श्रीचैतन्यचरितामृत	२५०.००

६१-अलंकारकौस्तुभ २५०.००
६२-श्रीगौरांगलीलामृतम् ३०.००
६३-शिक्षाष्टकम् १०.००
६४-संक्षेप श्रीहरिनामामृत व्याकरणम् ८०.००
६५-प्रयुक्ताख्यात मंजरी २०.००
६६-छन्दो कौस्तुभ ५०.००
६७-हिन्दुधर्मरहस्यम् वा सर्वधर्मसमन्वयः ५०.००
६८-साहित्य कौमुदी १००.००
६९-गोसेवा ४०.००
७०-पवित्र गो ५०.००
७१-गोसेवा (गोमांसादि भक्षण विधिनिषेध विवेचन) ५०.००

बंगाक्षर में मुद्रित ग्रन्थ

१-श्रीबलभद्रसहस्रनाम स्तोत्रम् १०.००
२-दुर्लभसार १०.००
३-साधकोल्लास ५०.००
४-भक्तिचन्द्रिका ४०.००
५-श्रीराधारससुधानिधि (मूल) २०.००
६-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद) ३०.००
७-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय ३०.००
८-भक्तिसर्वस्व ३०.००
९-मन:शिक्षा ३०.००
१०-पदावली ३०.००
११-साधनामृतचन्द्रिका ४०.००
१२-भक्तिसंगीतलहरी २०.००

अंग्रेजी भाषा में मुद्रित ग्रन्थ

१-पद्यावली (Padyavali) २००.००
२-गोसेवा (Goseva) ५०.००
३-पवित्र गो (The Pavitra Go) ८०.००

❖
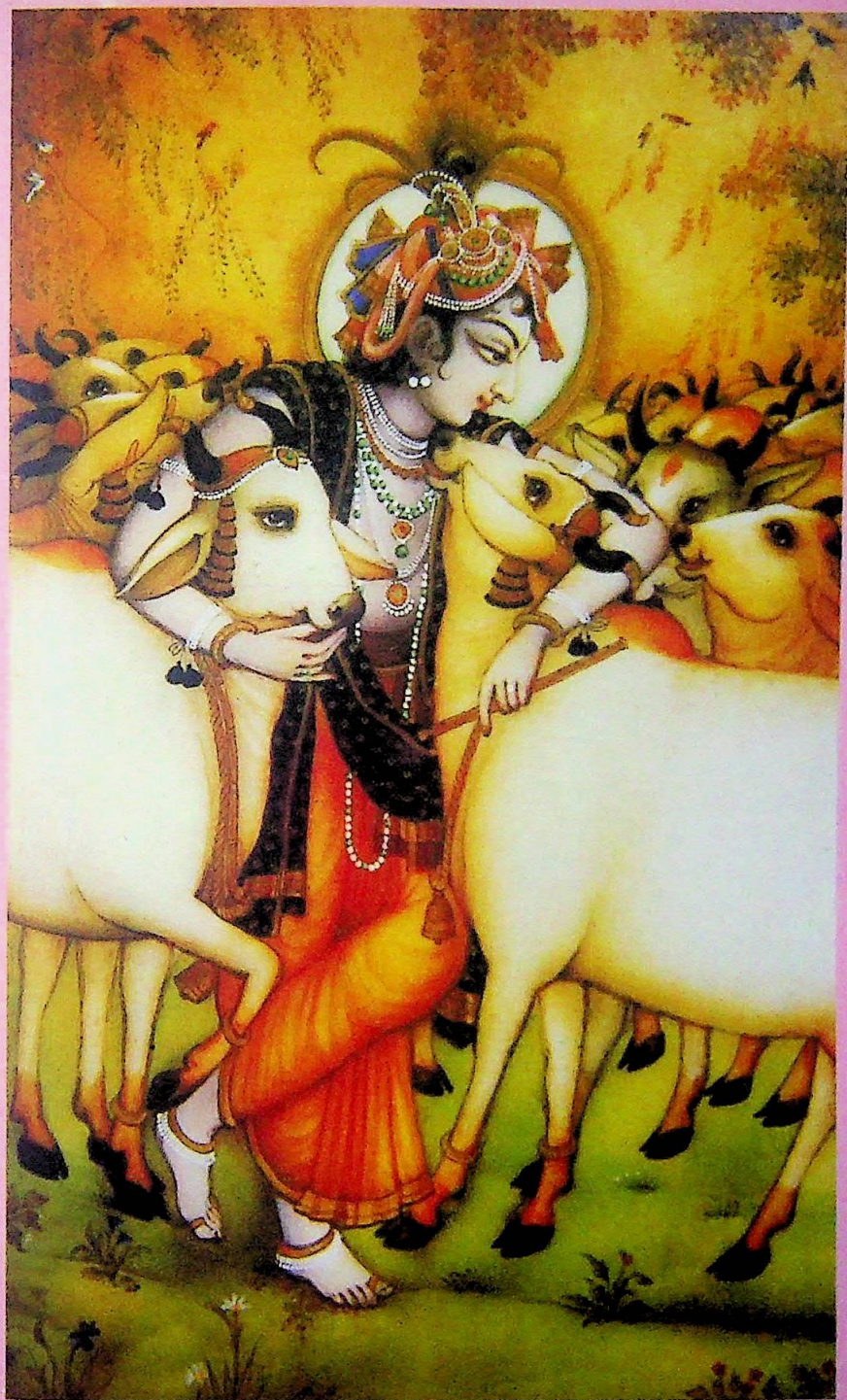
गवां कण्डूयनं कुर्य्याद् गोग्रासं गोप्रदक्षिणम्।
गोषु नित्यं प्रसन्नासु गोपालोऽपि प्रसीदति।।

गो के अंग में विद्यमान वाह्य कीट को हटाना चाहिए, उनको भोजन प्रदान करना चाहिए तथा उनकी परिक्रमा करनी चाहिए। गो को नित्य प्रसन्न रखने से शीघ्र ही गोपाल भी प्रसन्न हो जाते हैं।
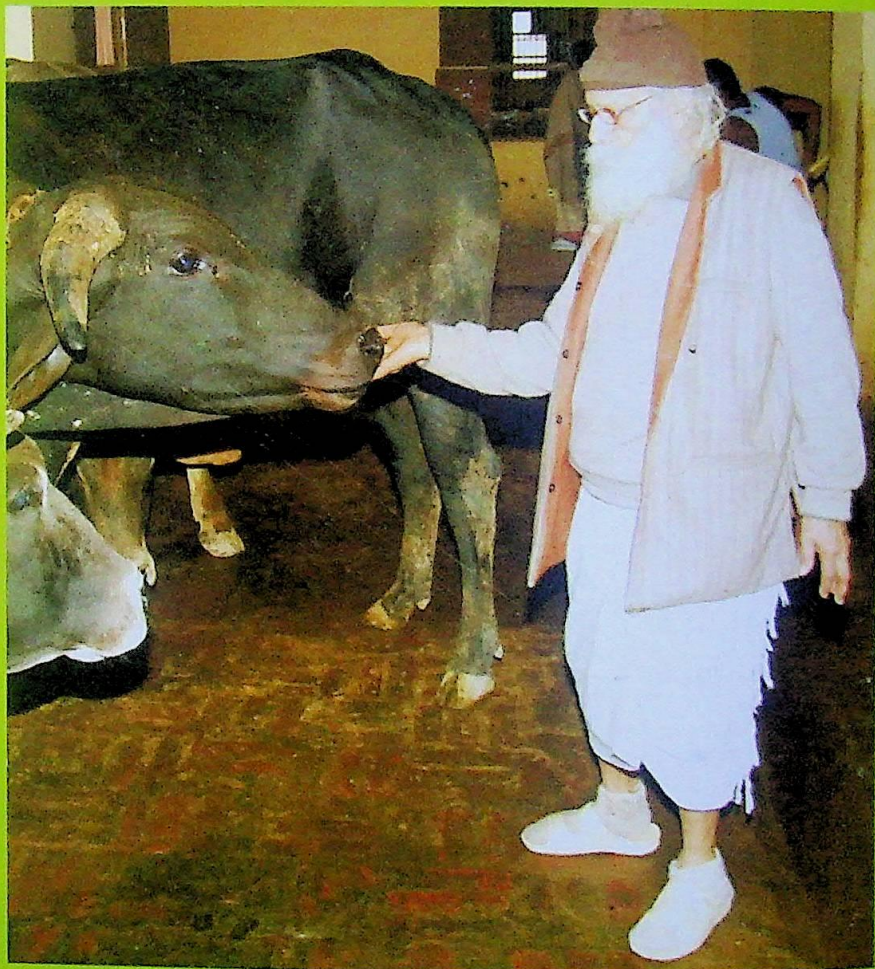
सम्पर्क –
श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीहरिदास निवास, प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ० प्र०
फोन : ०५६५–३२०२३२२, ३२०२३२५